प्रकाशक:—

साहित्य प्रकाशक मंडल,

नई सड़क, देहली।

रूपान्तर

पण्डित श्रीदत्त शास्त्री

मुद्रक:—

पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा,

भानु प्रिंटिंग वर्क्स,

धर्मपुरा, देहली।

# ❀ भूमिका ❀

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीतांजलि के सम्मुख ईट्स, राथेन्सटेन और एण्ड्रूज जैसे पश्चिमी विद्वानों ने मस्तक झुकाया है। योरोप ने इस पर मुग्ध होकर सवा लाख रुपये का विश्व पारितोषिक 'नोबिल पुरस्कार' देकर सम्मानित किया है।

कवि ने गीतांजलि में प्राकृतिक दृश्यों, आत्मा, परमात्मा, लोक-परलोक और समाज सेवा का वर्णन इतनी तन्मय स्थिति में गूढ़ भावों में किया है कि जिसे समझने के लिये हमें अनेक दिन एक २ वाक्य के साथ लगा देने पड़ते हैं। जितना अधिक उसे गूढ़ समझकर सरल समझने की चेष्टा करेंगे उतने ही हम कवि के भावों के निकट पहुँचेंगे, और वह महागूढ़ गीत हमें अत्यन्त सरल और साधारण जीवन-क्रिया समझ पड़ेगा। कवि की यही श्रेष्टता है।

अँग्रेज कवियों और विद्वानों ने गीतांजलि की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि हमने अपने नित्य कर्मों को करते २ इसे पढ़ा है और पढ़ते २ भावों में इतने उत्तेजित हो उठे हैं कि संभलना और स्वयं को संयत रखना महा कठिन हो गया। शांत होने में उन्हें अनेक दिन लगे। यथार्थ में हमें गीतांजलि के प्रत्येक गीत को समझने के लिये उसे अनेक बार पढ़ना पड़ेगा। कवि अपनी आत्मा को सर्वव्यापी आत्मा में मिला देना चाहता है। ब्रह्मलय की दृष्टि से वह जीवन मरण देश काल आदि पर विचार करता है। उसके लिये मृत्यु कोई भयंकर दुखप्रद वस्तु नहीं।

—श्रीदत्त शास्त्री

# साहित्य प्रकाशक मण्डल माला

के

## * स्थायी ग्राहक बनने के नियम *

१—स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश फ़ीस १) है, जो वापस नहीं की जाती।

२—स्थायी ग्राहकों को मण्डल से प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक [ कोर्स की पुस्तकों को छोड़ कर ] पोने मूल्य में दी जाती हैं।

३—स्थायी ग्राहकों को मण्डल से प्रकाशित होने वाली कमसे कम आधी पुस्तकें अवश्य लेनी पड़ती हैं।

४—नई पुस्तकें भेजने के १५ दिन पूर्व ग्राहकों को सूचना दी जाती है। कोई उत्तर न मिलने पर पुस्तकें कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं।

५—स्थायी ग्राहकों को हमारी एजेन्सियों या हमारे ट्रैवलिंग-एजेन्टों से पोने मूल्य में पुस्तकें पाने का अधिकार नहीं है; क्योंकि कमीशन की सुविधा केवल पोस्टेज-व्यय बढ़ जाने के कारण ही दी गई है।

---

# ९

मूर्खजन ! अपने ही कंधों पर चढ़ने का प्रयत्न करते हो ? मूर्ख भिक्षु ! तुम अपने ही द्वार पर भिक्षा मांगने आए हो ?

अपने समस्त भारों को प्रभु के हाथ में छोड़ दे जिसमें सब कुछ वहन करने की क्षमता है और जो कभी थककर पीछे नहीं देखता।

तुम्हारी तृष्णा की क्रूर उच्छ्वास प्रभु दीपक के प्रकाश को तुरन्त ही बुझा देती है। वह अपवित्र है, उसकी मलिन छाया से बच और दूर रह।

केवल पवित्र प्रेम द्वारा ही प्रभु आभास को प्राप्त कर और उसके अति निकट आ।

---

# १०

जहां अति दीन, अति नीच और पथभ्रष्ट निवास करते हैं, वहां तुम्हारे चरण टिके हुए हैं।

जब मैं तुम्हें प्रणाम करने का उपक्रम करता हूँ, तो मेरा प्रणाम उतना नीचे तक नहीं झुक पाता जहां अति दीन, अति नीच और पथभ्रष्टों के बीच में तुम्हारे चरण टिके हुए हैं।

अहङ्कार की वहां तक गति ही नहीं है जहां अति दीन, अति नीच और पथभ्रष्टों के बीच में दरिद्र वेश में तुम विचरते हो।

मेरे हृदय को उस स्थान का मार्ग कभी नहीं मिल सकता जहां अति दीन, अति नीच और पथभ्रष्टों के बीच में उन अकेलों के साथ सखा बनकर तुम विद्यमान रहते हो।

---

# ११

पूजा पाठ, भजन गान और माला के जाप को छोड़कर सब द्वारों को बन्द करके इस मन्दिर के एकान्त अंधेरे कोने में बैठा है जन ! तू किस की पूजा करता है ? नेत्र खोलकर देख, तेरा प्रभु तेरे सम्मुख नहीं है। वह अदृश्य है।

वह तो वहां है, जहां किसान कठोर भूमि में हल चला रहा है. जहां सड़क बनाने वाला गिट्टियां तोड़कर पत्थर के साथ संघर्ष कर रहा है। वह धूप और पानी में उनके साथ है, उसके वस्त्र धूलधूरित हो रहे हैं। हे जन ! तू पुजा के पवित्र वसन उतार फेंक और उसी के समान धूलिमय संघर्ष भूमि में उतर आ।

मुक्ति ? मुक्ति कहां है ? प्रभु ने तो स्वयं को भी सृष्टि के बंधन में बांध रखा है। वे हम सबके साथ सदा सर्वदा बंधे हैं।

समाधि और नेत्र मूंदने के प्रयास को सर्वदा त्याग दे। धूप, नेवैद्य और पुष्पों को एक ओर छोड़ दे। यदि तेरा वसन फटकर छिन्न-भिन्न हो जाय, मलिन हो जाय तो क्या हुआ। उसमें मिल, उसके साथ परिश्रम कर और पसीना बहा।

---

# १२

मेरी यात्रा बहुत लम्बी और बहुत देर की है।

मैं यात्रा के लिये प्रभात उषा की प्रथम किरण के रथ पर आरूढ़ होकर निकला था, और ग्रहों, नक्षत्रों में, लोक लोकान्तरों में, बन और पर्वतों में, सब दिक् लोकोंमें घूमकर मैं अपने भ्रमण चिन्ह छोड़ आया हूँ।

सबसे अधिक दूरी का मार्ग ही तुम्हारे सबसे अधिक निकट आ जाता है। वह शिक्षा सबसे अधिक गूढ़ है जिसके द्वारा सबसे अधिक सरल स्वर निकाला जा सकता है।

यात्री को अपने द्वार पर पहुँचने के लिये प्रत्येक पराये द्वार को खटखटाना पड़ता है।

मेरे नेत्र दूर और निकट सब कहीं भटके। फिर मैंने उन्हें मींचकर कहा, 'प्रभु! तुम कहां हो?

———

# १३

मैं जिस गीत को गाने के लिये आया था वह अभी तक नहीं गाया गया।

मैंने अपने दिन अपने वाद्य के सुर ताल मिलाने में ही बिता दिये।

न ताल शुद्ध हुआ न सुर ही सही बैठा। मेरे हृदय में केवल अभिलाषा की यंत्रणा हूक रही है।

कली अभी तक नहीं खिली। समीर उनके पास ठंडी आहें भर रही है।

मैंने उनका मुख नहीं देखा है, न उनका कंठस्वर ध्यान से सुना है। मैंने तो अपने घर के सामने वाले पथ से उनके चरणों की आहट मात्र सुनी है।

समस्त दिन आसन बिछाने में ही व्यतीत हुआ, और दीपक नहीं जल पाया। कहो, अब उनको घर में कैसे बुलाऊं?

मैं उनसे मिलने की आशा में जी रहा हूँ, परन्तु अब तक भेंट नहीं हुई है।

---

# १४

मेरी बहुत अभिलाषायें हैं और मेरी पुकार करुणा-जनक है। किन्तु कठोरतापूर्वक उनको अस्वीकार करके तुमने मेरी सर्वदा रक्षा ही की है। तुम्हारी यह अपार करुणा मेरे जीवन में रम रही है।

अत्यधिक अभिलाषाओं के संकट से बचाकर दिन प्रति दिन तुम मुझे इन साधारण महादानों-आकाश, प्रकाश, शरीर, जीवन और बुद्धि के योग्य पात्र बना रहे हो, जो तुमने मुझे बिना मांगे दिये थे।

कभी कभी मैं आलस्य में पिछड़कर फिर सचेत होकर अपने लक्ष्य की ओर दौड़ता हूँ, किन्तु तुम निष्ठुरतापूर्वक स्वय को मुझ से छिपा लेते हो।

निर्बल तथा अनिश्चित अभिलाषाओं के संकट से बचाकर अपनी अस्वीकृति द्वारा तुम मुझे अपनी पूर्ण स्वीकृति के योग्य बना रहे हो।

———

# १५

मैं तुम्हारे लिये एक गीत गाने को यहां उपस्थित हूँ। तुम्हारे इस मंदिर के एक कोने में मेरा स्थान है।

तुम्हारी सृष्टि में मुझे कोई कर्म नहीं करना है। मेरे निरर्थक जीवन से कुछ तानें कभी कभी निष्प्रयोजन निकल सकती हैं।

मध्य रात्रि के अंधेरे मंदिर में जब तुम्हारी उपासना का घण्टा बजे तब तुम मुझे गाने के लिये अपने सम्मुख खड़े होने की आज्ञा प्रदान करना।

प्रभात वायु में जब स्वर्ण-वीणा का स्वर मिलाया जाता है, तब अपनी सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा देकर मेरा सम्मान करना।

## १६

इस जगत के उत्सव में निमन्त्रण प्राप्त करके मेरा जीवन धन्य हुआ है। मेरे नेत्र देख चुके हैं और कान सुन चुके हैं।

इस उत्सव में वीणा बजाने का कार्य मुझे दिया गया था। मुझसे जितना हो सका, उतना मैंने किया।

मैं पूछता हूँ कि क्या अब अन्दर जाकर तुम्हारे दर्शन करने और अपना नीरव प्रणाम तुम्हें समर्पित करने का समय आ गया है?

# १७

मैं प्रेम के कर कमलों में आत्मसमर्पण करने की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इसी से इतनी देर हुई है और इतनी त्रुटियां हुई हैं।

लोग अपने विधि विधानों से मुझे जकड़ने के लिये आते हैं, किन्तु मैं उन्हें सदा टाल देता हूँ. क्योंकि मैं तो केवल प्रेम के करकमलों में आत्मसमर्पण करने के लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

लोग मुझ पर दोष लगाते हैं और मुझे असावधान कहते हैं। वास्तव में वे ठीक कहते हैं।

हाट बेला बीत गई और कामकाजियों का काम समाप्त हो गया। जो मुझे व्यर्थ बुलाने आये थे, वे क्रोधित होकर लौट गये। क्योंकि मैं तो केवल प्रेम के करकमलों में आत्मसम्मर्पण करने के लिये उसकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

---

# १८

मेघ उमड़ रहे हैं, अंधकार फैल रहा है। हे प्रेम! तुमने मुझे द्वार के बाहर बिल्कुल अकेला क्यों बैठा रखा है?

हाट बेला में काम काज के समय मैं लोगों के बीच में घिरा रहता हूँ, परन्तु अब इस अंधकार बेला में मैं केवल तुम्हारी आशा कर रहा हूँ।

यदि तुम मुझे अपना मुख नहीं दिखलाओगे और मुझे बिल्कुल शून्य रहने दोगे तो पता नहीं कि यह कठिन वर्षाकाल कैसे व्यतीत होगा।

मैं आकाश में दूर तक फैले हुए अन्धकार में टकटकी लगाये हुए हूँ। मेरा हृदय चंचल वायु के साथ विलाप करता हुआ भटक रहा है।

---

## १९

प्रिय ! यदि तुम न बोलोगे तो मैं अपने हृदय को तुम्हारे मौन से भर लूंगा और इसे सहन करूंगा। मैं चुपचाप पड़कर तारों से भरी गहन धीरता से अपना सिर झुकाये हुए रात्रि की भांति प्रतीक्षा करूंगा।

निश्चय ही प्रभात उदय होगा और अंधकार विलीन हो जायगा। तब तुम्हारी वाणी की स्वर्णधारा आकाश को चीर कर धरातल की ओर प्रवाहित होगी।

सभी पक्षियों के घोंसले से तुम्हारे शब्द गीतों के आकार बनकर उड़ेंगे। मेरी वाटिका में तुम्हारे स्वर फूलों के रूप में खिलेंगे।

---

# ७०

जब कमल पुष्प खिला, तब मेरा चित्त चंचल हो रहा था। मुझे उसका ज्ञान नहीं हुआ। मेरी टोकरी खाली थी, किन्तु पुष्प की ओर मेरा ध्यान नहीं गया।

मैं उदास चित्त लिये बैठा था और स्वप्न से चौंक उठता था। दक्षिण समीर में विचित्र सौरभ की मधुरता अनुभव होती थी।

इस मन्द मधुर सौरभ ने मेरे मन में लालसा की यन्त्रणा उत्पन्न कर दी। और मुझे प्रतीत हुआ कि यह उसकी पूर्ति के लिये प्रयत्नवान वसन्त की उत्सुक वायु है।

मैंने तब नहीं जाना था कि वह इतने निकट है। वह मेरी ही है और पूर्ण माधुर्य सहित मेरे ही अन्तःकरण की गहराई में प्रस्फुटित हुई है।

— —

# २१

इस बार मैं अपनी नौका को समुद्र में अवश्य उतारूंगा। तट पर मेरा समय आलस्य में बीता जाता है!

बसन्त व्यतीत हो रहा है, अब मैं कुम्हलाये हुए निरर्थक फूलों के भार को लिये हुए रुका पड़ा हूँ।

लहरें कोलाहल कर रही हैं। तट पर छायादार पथ में पीली पत्तियां झर झरकर गिर रही हैं।

नीरव जन! तुम किस शून्य की ओर ताक रहे हो? क्या तुम वायु में व्याप्त उस उल्लास को अनुभव नहीं करते जो सुदूर गायन के स्वरों के साथ दूसरे तट से इधर प्रवाहित हो रहा है।

---

# २२

बरसते हुए सावन की अंधेरी छाया में दबे पांव, रात्रि से निस्तब्ध, सब प्रहरियों से बचकर तुम चलते हो।

प्रचण्ड पूर्वी वायु की निरन्तर चपेटों को सहन करके आज प्रभात ने अपने नेत्र मूंद लिये हैं। एक घनघोर घटा का घूंघट सर्वदा जाग्रत नीलाकाश पर कढ़ गया है।

कानन भूमि ने गीत गाना बन्द कर दिया है प्रत्येक द्वार बन्द है। इस निर्जन पथ के तुम ही एक मात्र पथिक हो। मेरे सखा! मेरे प्रिय! मेरे द्वार खुले हैं, स्वप्न की भांति पास से न निकल जाना।

---

# २३

इस भयानक रात्रि में क्या तुम प्रेम अभिसार के लिये चले हो, आकाश विलाप करता है।

मुझे आज नींद नहीं। मैं बारम्बार द्वार खोलता हूँ और अंधकार में बाहर की ओर देखता हूँ।

सम्मुख कुछ नहीं दीखता। मैं विस्मित हूँ कि तुम्हारा मार्ग किधर है ?

महाघोर काली नदी के किस काले तट से, भयंकर बन की किस गहन गहराई से होकर मेरे समीप आने के लिये तुम अपने मार्ग पर देख देखकर पग रख रहे हो ?

---

# २४

यदि दिन बीत चुका है, यदि पक्षी अब नहीं चहचहाते, यदि वायु शिथिल हो गई है, तो अंधकार का गहन आवरण मेरे ऊपर वैसे ही डाल दो जैसे तुमने पृथ्वी को निद्रा की चादर उढ़ाई है, और शिथिल कमल की पंखड़ियों को संध्या समय कोमलता से बंद कर दिया है।

उस यात्री की लज्जा और दरिद्रता को दूर करो, और अपनी दयामय रात्रि के आश्रय में उसे पुष्प की भांति नवजीवन प्रदान करो, जिसकी झोली यात्रा समाप्त होने से पूर्व ही खाली हो गई है, जिसके वस्त्र फटकर धूलि धूरित हो चुके हैं, और जिसका बल क्षीण हो गया है।

———

# २५

प्रभु । मुझे अपनी रक्षा में लेकर इस श्रमप्रद रात्रि में आराम से सोने दो ।

मैं अपने अलसाये हृदय से तुम्हारी पूजा की शिथिल तैयारी नहीं करना चाहता ।

तुम ही तो दिन भर की थकी हुई आंखों पर रात्रि का आवरण डालते हो जिससे वे पुनः जाग्रत होकर नवजीवन का आनन्द प्राप्त करें ।

————

# २६

वे आकर मेरे समीप बैठ गये, किन्तु मैं सोता ही रहा। मुझ भाग्यहीन की इस नींद पर बारम्बार धिक्कार है।

वे रात्रि की नीरवता में आये। उनके हाथों में वीणा थी, जिसकी मधुर स्वरलहरी से मेरा स्वप्न प्रतिध्वनित हो गया।

हाय! मेरी प्रत्येक रात्रि इसी प्रकार व्यतीत होती है। मैं सदैव उनके दर्शनों से वंचित रह जाता हूँ। केवल उनकी श्वास मेरी निद्रा को स्पर्श करती है। वे मेरे इतने निकट आकर भी मुझे अप्राप्य हैं।

---

# २७

ज्योति ! ज्योति कहां है ? उसे कामना की प्रचण्ड अग्नि से प्रज्वलित करो।

दीपक है परन्तु उसमें लौ नही उठती। क्या यही मेरा प्रारब्ध है ! इससे तो मृत्यु अच्छी होती।

भाग्यहीन जन ! तेरे द्वार पर दुख खटखटा रहा है। वह यह सन्देश लाया है कि तेरा प्रभु जागता है और तुझे रात्रि के अन्धकार में प्रेम अभिसार के लिये बुला रहा है।

आकाश में बादल छाये हुए हैं और वर्षा की झड़ी लगी है। न जाने मेरा चित्त क्यों व्याकुल है। कुछ समझ में नहीं आता।

बिजली की क्षणिक चमक मेरे नेत्रों पर महान् अन्धकार आवृत करती है। मेरा हृदय उस पथ की खोज में है जिधर से निशा का गायन मुझे आवाहन कर रहा है।

ज्योति ! ज्योति कहां है ? उसे कामना की प्रचण्ड अग्नि से प्रज्वलित करो। बिजली कड़क रही है, वायु शून्य आकाश में प्रचण्ड वेग से चल रही है, रात्रि काल से भी काली है इस भयानक अन्धकार में अपने प्रेम दीपक को अपने जीवन से प्रज्वलित करो।

---

# २८

मैं कठोर शृंखलाओं में बंधा हूँ। इनको तोड़ने के प्रयत्न में मेरा हृदय व्यथित होता है।

मुझे केवल मुक्ति की आकांक्षा है, किन्तु उसकी आशा करने में मुझे लज्जा आती है।

मैं जानता हूँ कि तुम अमूल्य निधि के भाण्डार हो। तुम मेरे श्रेष्ट मित्र हो। किन्तु मुझमें इतना साहस और बल नहीं कि मैं वाह्य चमकदमक के मिथ्या सामान को अपने गृह से निकाल बाहर करदूं।

मैंने जिस चादर को ओढ़ा है वह मिट्टी और मृत्यु की चादर है। मैं उससे घृणा करता हूँ, फिर भी प्रेम से लपेटे हूँ।

मैं महा ऋणी और महा विफल जन हूँ। मैं गुप्त लाज से हृदय को दबाये हुए हूँ जब मैं अपने कल्याण की याचना करता हूँ, तब मैं भय से कांप उठता हूँ कि कहीं मेरी प्रार्थना स्वीकार न हो जाय।

---

# २९

जिसे मैं अपने नाम से इङ्गित करता हूँ वह इस कारागार में विलाप करता है। मैं अपने चारों ओर इस दीवार के बनाने में सर्वदा संलग्न हूँ। ज्यों २ यह दीवार आकाश में ऊँची उठती जाती है, त्यों २ इसकी अंधेरी छाया में मेरा सत्य-स्वरूप मेरी दृष्टि से छिपता जाता है।

मैं इस बड़ी दीवार पर गर्व करता हूँ और बड़ी तत्परता से इसपर रेत और मिट्टी का गारा चढ़ाता हूँ कि कहीं इसमें छिद्र न रह जाय। परन्तु इसी समस्त चिन्तन में मेरा सत्यस-त्ररूप मेरी दृष्टि से छिपता जाता है।

---

## ३०

तुमसे मिलने के लिये मैं अकेला निकला था। परन्तु यह कौन है जो नीरव अन्धकार में मेरे पीछे २ चला आ रहा है।

उससे बचने के लिये मैं इधर उधर हट जाता हूँ, किन्तु मैं उससे बच नहीं पाता हूँ।

वह अपनी धृष्टि-चाल से धूल उड़ाता है और मेरे प्रत्येक शब्द के साथ ज़ोर से बोल उठता है।

वह मेरी ही तुच्छ आत्मा है। वह लज्जित नहीं, किन्तु मुझे उसके सहित तुम्हारे द्वार पर आते लज्जा आती है।

---

# ३१

बन्दी ! तुम्हें किसने बांधा ?

बन्दी ने उत्तर दिया, 'मेरे प्रभुने मुझे बांधा है। मैंने सोचा था कि मैं इस संसार में धन और बलमें सबसे श्रेष्ट रहूँगा। मैंने अपने कोष में उस रुपये को भी जमा कर लिया जो मुझे अपने स्वामी को देना चाहिये था। जब मैं निद्रा के बशीभूत हुआ तो अपने स्वामी की शय्या पर ही लेट गया। आंख खुलने पर मुझे ज्ञात हुआ कि मैं अपने ही कोषागार में बंदी हूँ !

बन्दी। ये बेड़ियां किसने बनाईं ?

बन्दी ने उत्तर दिया, 'मैंने ही बड़े यत्न से इन्हें बनाया है। मैंने सोचा था कि मैं अपने प्रबल प्रताप से सारे संसार को बन्दी करके एक छत्र शांति पूर्वक स्वाधीनता भोगूंगा। अतएव रातदिन कठोर परिश्रम करके बड़ी २ भट्टियों और हथोड़ों से इस बेड़ी के बनाने में तत्पर रहा। अन्त में जब काम समाप्त हुआ और कड़ियां पूर्ण और अटूट हो गईं तो मुझे ज्ञात हुआ कि इसने मुझे कसकर बांध लिया है।'

———

# ३२

संसारीजनों का प्रेम मुझे सब भांति जकड़ने का यत्न करता है और मेरी स्वतन्त्रता को छीनता है। परन्तु तुम्हारा प्रेम तो उन सबसे अद्‌भुत है। वह मुझे दासता की शृंखलाओं में नहीं बांधता, किन्तु वह मुझे स्वतन्त्र रखता है।

संसारीजन मुझे अकेला नहीं छोड़ते कि कहीं मैं उन्हें भूल न जाऊं। इस लीनता में दिन व्यतीत हो रहे हैं और तुममें व्याप्त होने का अवसर ही नहीं मिलता।

यद्यपि मैं अपनी प्रार्थनाओं में तुम्हें नहीं पुकारता, यद्यपि मैं अपने हृदय में तुम्हें धारण नहीं करता, तब भी तुम्हारा प्रेम मेरे प्रेम की प्रतीक्षा कर रहा है।

# ३३

वे दिन में मेरे गृह में आये और कहने लगे, 'हमें यहां बसने दो। हम थोड़ी सी जगह में अपना निर्वाह करलेंगे।'

उन्होंने कहा, प्रभु की उपासना में हम तुम्हारी सहायता करेंगे और जितना प्रसाद हमें प्राप्त होगा उसी से हम संतुष्ट रहेंगे।' यह कहकर वे गृह के एक कोने में चुपचाप दीन होकर बैठ गये।

किन्तु अब मैं देखता हूँ कि रात्रि के अंधकार में वे प्रबल और प्रचण्ड होकर मेरे पवित्र मन्दिर में घुस आये और मलिन लालच से प्रेरित होकर प्रभु की वेदि पर से भेंट उठाकर ले गये।

---

# ३४

मुझ में केवल इतना ममत्व रहने दो जिससे मैं तुमको अपना सर्वस्व कह सकूं।

मुझमें केवल इतनी कामना रहने दो जिससे प्रत्येक ओर तुम्हें अनुभव कर सकूं; प्रत्येक वस्तु में तुम्हें प्राप्त कर सकूँ और प्रत्येक पल में अपना प्रेम तुम्हें अर्पण कर सकूँ।

मुझमें केवल इतना अहंकार रहने दो जिससे मैं तुम्हें कभी न छिपा सकूँ।

मेरी बेड़ी का केवल इतना भाग शेष रहने दो जिससे मैं तुम्हारी इच्छा के साथ बंधा रहूँ और अपने जीवन में तुम्हारे उद्देश्य को पूर्ण करूं। वह बंधन तुम्हारे प्रेम का है।

———

# ३५

जहां मन भय से परे हैं और मस्तक ऊंचा उठा है।

जहाँ बुद्धि स्वतन्त्र है।

जहां संसार क्षुद्र घरेलू दीवारों में विभक्त नहीं किया गया है।

जहां सत्य का स्रोत प्रवाहित है।

जहां अथक पुरुषार्थ पूर्णता की ओर बढ़ता है।

जहां विवेक की स्वच्छ धारा पुरानी रूढ़ियों की भयानक शुष्क भूमि की ओर नहीं बहती।

जहां मस्तिष्क तुम्हारे द्वारा सदा विस्तृत विचारों और कर्मों की ओर अग्रसर होता है।

प्रभु ! स्वतन्त्रता के उस दिव्यलोक में मेरा देश जागरित हो।

———

# ३६

प्रभु ! मेरी तुमसे यह प्रार्थना है कि मेरे हृदय की क्षुद्रता के मूल पर तुम प्रहार करो।

ऐसी शक्ति दो जिससे मैं सुख और दुख को समान भाव से सहन कर सकूं।

ऐसा पुरुषार्थ दो जिससे मैं अपने प्रेम को सेवा और परोपकार द्वारा सफल कर सकूं।

ऐसी भावना दो जिससे मैं दीन दुखियों को कभी विस्मृत न कर सकूं। मेरा मस्तक अभिमानी सत्ता के सम्मुख कभी न झुके।

ऐसी महानता दो जिससे मैं अपने मन को नित्य की तुच्छ बातों से बहुत ऊंचा रखूं।

ऐसा बल दो जिससे मैं अपनी शक्ति को प्रेम पूर्वक तुम्हारे वशीभूत कर सकूं।

---

## ३७

जब मेरी शक्ति क्षीण होने लगी तब मैंने विचारा कि अब मेरी यात्रा का अन्त आ गया है। मेरी जीवन सामिग्री सब समाप्त हो गई थी और शांतिमय एकाग्रता और नीरवता में आश्रय लेने का समय आ गया है।

किन्तु मुझे प्रतीत होता है कि मुझमें तुम्हार इच्छा का अन्त नहीं हुआ। पुराने शब्दों के लुप्त हो जाने पर नूतन स्वरावलि का प्रादुर्भाव होता है। तब प्राचीन मार्ग नष्ट हो जाते हैं और नवीन देश अपने अद्भुत चमत्कारों के साथ प्रकट होते हैं।

---

# ३८

हे प्रभु! मेरे हृदय में सर्वदा यही ध्वनि हो कि मुझे एक-मात्र तुम्हारी इच्छा है। मेरी अन्य वासनायें जो सदैव मेरे चित्त को चंचल रखती हैं, मिथ्या और निस्सार हैं।

जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार में प्रकाश निहित है उसी प्रकार मेरी अचेतन अवस्था में मेरे अन्तःकरण से यही ध्वनित होता है कि मुझे एकमात्र तुम्हारी इच्छा है।

जिस प्रकार प्रचण्ड आंधी शांति को भंग करके भी अपना अन्तिम आश्रय शान्ति में ही ढूंढ़ती है, उसी प्रकार मेरा विद्रोह तुम्हारे प्रेम पर आघात करके भी यह ध्वनित करता है कि मुझे एक मात्र तुम्हारी इच्छा है।

———

# ३९

प्रभु ! जब मेरा हृदय कठोर और शुष्क हो जाय तब मेरे ऊपर करुणा की वर्षा कीजिये।

प्रभु ! जब मेरे जीवन से विनय लुप्त हो जाय तब मेरे पास आकर सुधागीत गाइये।

प्रभु ! जब सांसारिक कार्य के प्रचण्ड कोलाहल से भागकर मैं एकान्त नीरवता में जा बैठूं तब सुख और शांति सहित मेरे पास आइये।

प्रभु ! जब मेरा कृपण मन दीन हीन होकर एक कोने में बैठ जाय तब मेरे गृहद्वार खोलकर राजसमारोह सहित आइये।

प्रभु ! जब वासना मेरे मन को माया और मल से मलिन करदे, तब हे शुद्ध और चैतन्य प्रभु ! अपने उज्वल प्रकाश और गर्जना सहित आइये।

---

# ४०

प्रभु ! मेरा हृदय चिरकाल से शुष्क पड़ा है। क्षितिज में भयानक नग्नता व्याप्त है, मेघ का नाममात्र आवरण भी नहीं है। सुन्दर शीतल बौछार का तनिक चिन्ह भी नहीं दीखता।

प्रभु ! यदि तुम्हारी इच्छा हो तो काल के समान काली और कुपित आंधी को भेजो और दामिनी की दमक से समस्त गगन मण्डल को चमका दो; परन्तु इस व्याप्त, निःशब्द, निस्तब्ध, प्रखर और निष्ठुर ताप को तो बुला ही लो। यह तीव्र निराशा से हृदय को दहन कर रही है।

प्रभु ! जिस प्रकार पिता के क्रोध करने पर माता सन्तान की ओर सजल क्षमा दृष्टि से देखती है उसी प्रकार करुणा रूपी मेघों को मुझ पर बरसने दो।

---

# ४१

मेरे प्रिय देव ! तुम सबके पीछे स्वयं को माया में छिपाये कहां खड़े हो ? मूर्खजन तुम्हें कुछ भी न समझ कर उस धूल पथ पर तुम्हें धूलि में करके तुम्हारे समीप से निकल जाते हैं। मैं पूजन सामिग्री सजाकर घन्टों तुम्हारा मार्ग देखती हूँ। पथिक आते हैं और मेरे फूलों को एक एक करके ले जाते हैं। मेरी पूजा थाली लगभग खाली हो चुकी है।

प्रातःकाल व्यतीत हो गया और मध्यान्ह भी निकल गया। सन्ध्या के अंधकार में मेरे नेत्र उनींदे होने लगे हैं। निजगृहों को जाते हुए पथिक मेरी ओर देख देख कर मुस्कराते है और मुझे लजाते हैं। मैं एक भिक्षुक युवती की भांति अपने मुख पर घूंघट काढ़कर बैठी हूँ। जब वे मुझको पूंछते हैं कि तू क्या चाहती है तब मैं अपनी आंखें नीची कर लेती हूँ और उन्हें उत्तर नहीं देती।

हाय ! मैं उन्हें कैसे बताऊं कि मैं उनका मार्ग देख रही हूँ, और उन्होंने यहां आने का वचन दिया है। लाज के मारे मैं कैसे कहूँ कि यह दरिद्रता ही मैंने भेंट के लिये रखी है।

हां ! मैंने इस अभिमान को अपने हृदय में छिपा रखा है। मैं घास पर बैठी हुई आशा भरे नयनों से आकाश की ओर निहारती हूँ और तुम्हारे अचानक आगमन के वैभव का स्वप्न देखी हूँ । स्वप्न में सब दीपक जल रहे और तुम्हारे रथ पर स्वर्ण ध्वजा फहरा रही है। जब तुम्हारा रथ मेरे समीप पहुँचा तब लोग आश्चर्य से अवाक् खड़े देखते रहे कि तुमने अपने रथ से उतरकर मुझ फटे वस्त्रधारी दीन हीन भिक्षुक युवती को धूलि से उठाया और अपने एक ओर बैठा लिया। मैं लाज और मान के कारण ग्रीष्मपवन से लता की भांति कांप रही थी।

समय बीत रहा है किन्तु तुम्हारे रथ के पहियों की कोई ध्वनि अब तक सुनाई नहीं देती। बहुत से जलूस बड़ी धूमधाम और चमकदमक के साथ निकलते जाते हैं; तब क्या केवल तुमही सबके पीछे छाया में छिपे चुपचाप खड़े रहोगे और क्या केवल मैं ही प्रतीक्षा करती रहूँगी तथा निष्फल कामना के वशीभूत होकर रो रोकर अपना हृदय विदीर्ण करूंगी।

---

# ४२

प्रभात के झुरमुट में यह निश्चय हुआ था कि हम और तुम दोनों एक नौका में बैठकर चलेंगे, और संसार में किसी को भी हमारी इस लक्ष्य हीन यात्रा का पता नहीं लगेगा।

उस अपार सागर में तुम्हारी मधुर मुस्कान और तुम्हारे चुपचाप सुनने से मेरे गीत तरंगों की भांति स्वतन्त्र और शब्द-बधन से मुक्त मधुर स्वरों में परिणित हो जायेंगे।

क्या वह समय अभी तक नहीं आया है? क्या अभी कर्म शेष हैं? यह देखो, तट पर अंधकार होने लगा। सन्ध्या की धुन्ध में समुद्रपक्षी उड़ उड़कर अपने घोंसलों को जा रहे हैं।

न जाने कब जंजीरे खुल जांय और यह नौका सूर्यास्त की अन्तिम झिलमिलाहट के समान कब रात्रि में विलीन हो जाय?

---

# ४३

एक दिन वह था जब मैं तुम्हारे स्वागत के लिये तैयार भी नहीं था कि एक साधारण व्यक्ति की भांति मेरे बिना बुलाये और जाने तुमने मेरे हृदय में प्रवेश किया और मेरे जीवन के कुछ अनित्य क्षणों पर नित्यता की छाप लगादी।

आज जब अकस्मात उन पर मेरी दृष्टि पड़ती है और तुम्हारी छाप देखता हूँ तो प्रतीत होता है कि वे क्षण तुच्छ विस्मृत क्षणों के हर्ष और शोक की घटनाओं की स्मृति के साथ बिखरे और भुलाये हुये पड़े हैं।

मुझे बालक्रीड़ा करते देखकर तुमने घृणापूर्वक अपना मुख नहीं फेरा। तुम्हारे जिन पदों की ध्वनि मैंने अपने क्रीड़ास्थल में सुनी थी, आज वही प्रतिध्वनि प्रत्येक तारे में गूंज रही है।

# ४४

पथ तट पर जहां प्रकाश के पीछे अंधकार होता है, तथा ग्रीष्म के पीछे वर्षा होती है, वहां तुम्हारी प्रतीक्षा करना और तुम्हारा मार्ग देखना मुझे सर्वप्रिय है।

दूतजन लोक-लोकान्तरों से सम्वाद लाकर मुझे बधाई देते और फिर तीव्रगति से पथ पर अग्रसर होते हैं। मेरा अन्तस्तल हंसता है, तथा बहती वायु सुगन्धित प्रतीत होती है।

मैं प्रातःकाल से सायंकाल तक अपने द्वार के सामने बैठा रहता हूँ। मुझे विश्वास है कि अकस्मात सुखबेला में मैं तुम्हारे दर्शन करूंगा।

तब तक मैं अकेला हंसता और गाता हूँ। वायु आशा के सौरभ से भर रही है।

# ४५

क्या तुमने उनकी मन्द मन्द पाद ध्वनि नहीं सुनी है ? वे आते हैं, आते हैं, नित्य आते हैं !

प्रत्येक घड़ी, प्रत्येक पल, प्रत्येक दिन, प्रत्येक रात्रि वे आते हैं, आते हैं, नित्य आते हैं। मैंने अपने मन की भिन्न २ अवस्थाओं में अनेक गीत गाये हैं, किन्तु उन सबके स्वरों से सदैव यही उद्घोषित हुआ है कि वे आते हैं; आते हैं, नित्य आते हैं।

ये उन्हीं के चरण कमल हैं जो शोक और दुख में मेरे हृदय को दबाते हैं। ये वही पद कमल हैं जो मुझमें हर्ष स्फुरित करते हैं।

# ४६

मैं नहीं जानता कि तुम कितने समय से मुझसे मिलने के लिये मेरे निकट निरन्तर आ रहे हो। तुम्हारे सूर्य और चन्द्र तुमको सर्वदा मुझसे नहीं छिपा सकते।

प्रभात और सन्ध्या के समय अनेक बार तुम्हारी पाद ध्वनि सुन पड़ी है। तुम्हारे सन्देश-वाहकों ने मेरे हृदय में आकर मुझे चुपचाप आवाहन किया है।

मैं नहीं जानता कि आज मेरा मन इतना विचलित क्यों है और हृदय में आनन्द उद्गार क्यों उठ रहे हैं?

प्रतीत होता है कि अब कार्य बन्द करने की बेला आ पहुँची है। अब मैं तुम्हारे आगमन के मंद सौरभ को वायु में अनुभव करने लगा हूँ।

---

# ४७

उनका मार्ग देखते देखते सारी रात्रि व्यतीत हो गई। मुझे भय है कि कहीं मेरे थक कर जाने सो जाने पर वे मेरे द्वार पर न आ जांय। मित्रों उनके लिये मार्ग खुला रखना, उन्हें आने से रोकना नहीं।

यदि उनकी पद्ध्वनि से मेरी नींद न खुले तो कृपा कर कोई मुझे जगाना मत। मैं पक्षियों के कलरव और वायु के कोलाहल से प्रातःकालीन प्रकाश के महोत्सव में निद्रा से उठना नहीं चाहता। यदि मेरे प्रभु मेरे द्वार पर अकस्मात् आ भी जांय तब भी मुझे शांतिपूर्वक सोने देना।

मेरी नींद ! प्रिय नींद ! तुम तो उसी समय जाओगी जब वे तुम्हारा स्पर्श करेंगे। मेरे मुंदे हुए नेत्रों ! तुम तो अपनी पलकों को उनकी मुस्कान की ज्योति में खोलोगे, जब मेरे सम्मुख स्वप्न की भांति खड़े हो जायेंगे।

सब ज्योतियों और सब रूपों में उनपर सबसे प्रथम मेरी दृष्टि पड़ने दो। मेरी जाग्रत आत्मा में आनन्द की सबसे पहली तरंग उनकी कटाक्ष से उत्पन्न होगी। मुझे ज्यों ही अपने स्वरूप का ज्ञान हो त्योंही मुझे उनकी उपलब्धि होने दो।

---

# ४८

प्रभात शान्ति-सागर पक्षियों के गान से तरंगित होने लगा। पथ के दोनों ओर फूल खिल रहे थे और स्वर्ण-रश्मियां बादलों की ओट से निकलकर इधर उधर बिखर गई थीं। किन्तु हम कार्यवद्ध अपने पथ पर चलते ही गये। हमने न सुखगान गाया और न कोई प्रमोद ही किया। हाट करने के लिये हम गांव में नहीं गये। हम न हंसे, न बोले, न पथ में कहीं ठहरे। ज्यों २ समय व्यतीत होता जाता था, हम अपने पग तीव्र गति से उठाते जाते थे।

सूर्य मध्य आकाश में चढ़ गया। पक्षी छाया में कुहूँ कुहूँ करने लगे।

मध्यान्ह की तप्त वायु में कुम्हलाई हुई पत्तियां नाचतीं और चक्कर लगाती थीं।

ग्वाले का लड़का बट की छाया में सुषुप्त पड़ा था। मैं जलाशय के समीप लेट गया और अपने थके हुए अंगों से घास पर विश्राम किया।

मेरे साथियों ने मेरा उपहास किया और अहंकार से सिर ऊँचा किये तीव्र गति से आगे को बढ़ गये। उन्होंने पीछे की

ओर एक बार भी मुड़कर नहीं देखा, और न अभिवादन किया। कुछ समय उपरान्त वे सुदूर नीलछाया में दृष्टि से ओझल हो गये। उन्होंने अनेक मैदानों और पर्वतों को पार किया और अनेक बड़े बड़े देश उनके मार्ग में पड़े। उपहास और निन्दा ने मुझसे उठने का आग्रह किया परन्तु मेरे हृदय ने एक न मानी। मैं उन रमणीय वृक्षों की शीतल छामा में अगौरवीय आनन्द में निमग्न लेटा रहा।

रवि-रश्मियों की सुन्दर कारीगरी से विभूषित हरियाली का विश्राम धीरे २ अपना प्रभाव मेरे हृदय पर डालने लगा। मैं यह भी भूल गया कि मैं किस उद्देश्य से यात्रा करने निकला था। मनोरम छाया और मधुर गान के कौतुक ने मुझे अनायास ही अचेतन कर लिया।

अन्त में जब मेरी निद्रा खुली और मैंने नेत्रों को खोला तो मैंने देखा कि तुम मेरे पास खड़े हो और मन्द मुस्क्यान से मेरी निद्रा को प्लावित कर रहे हो। कहां वह अतिदीर्घ श्रमप्रद कठिन मार्ग और कहां यह सुगम सुलभ मिलन!

---

# ४९

तुम अपने सिंहासन से नीचे उतर आये और मेरी कुटी द्वार पर आ खड़े हुए।

मैं अकेला एक कोने में बैठा गा रहा था कि मेरी वाणी तुमने सुनी। बस तुम नीचे उतर आये और मेरी कुटी द्वार पर आ खड़े हुए।

तुम्हारी सभा में अनेक प्रवीण गायक हैं और वहां सदैव गान हुआ करता है परन्तु मुझ नव गायक के गाने से तुम्हारा प्रेम उमड़ पड़ा। मेरा एक करूण अल्प स्वर विश्वके विराट गान में लीन हो गया और एक फूल पारितोषिक लेकर तुम नीचे उतर आये और मेरी कुटी द्वार पर आ खड़े हुए।

---

## ५०

जब मैं द्वार २ भिक्षा मांगने गांव में गया था तब एक आलोकित स्वप्न की भांति तुम्हारा स्वर्ण रथ दृष्टिगोचर हुआ। मैं विस्मित हुआ कि यह नर श्रेष्ठ कौन है।

मेरी आशायें उच्च हो गईं और मैंने सोचा कि मेरे दुर्दिनों का अन्त हो गया। इस आशा में कि आज बिना मांगे ही मुझे भिक्षा मिलेगी, मैं खड़ा हो गया।

स्वर्ण रथ मेरे समीप आकर रुक गया। तुमने मुझे देखा और हंसकर रथ से उतर पड़े। मुझे प्रतीत हुआ कि मेरे जीवन का भाग्य उदय हो रहा है। तुमने आकर अपना दाहिना हाथ अकस्मात् मेरी ओर बढ़ाया और कहा, 'तू मुझे क्या देता है ?'

यह महा उपहास! एक भिक्षुक के सम्मुख तुम हाथ फैलाते हो! मैं यह देखकर स्तम्भि और अनिश्चित खड़ा सोचता रहा। फिर मैंने अपनी झोली में से सबसे छोटा अन्न कण निकाला और तुम्हें दे दिया।

किन्तु जब संध्या समय मैंने अपनी झोली को आंगन में खाली किया तो अन्न कणों की ढेरी में सोने का एक कण मिला। मैं अवाक् रह गया। मैं फूट २ कर रोया और यह इच्छा हुई कि मैंने अपना सर्वस्व साहस-पूर्वक तुम्हें क्यों न दे दिया।

# ५२

मैंने सोचा था कि तुम्हारे कण्ठ में पड़े हुए गुलाब हार को मैं तुमसे मांग लूंगा, किंतु मेरा साहस नहीं हुआ। मैं प्रातः काल तक इस आशा में बैठा रहा कि जब तुम चले जाओगे तो तुम्हारी शय्या पर पडे हुए हार के दो एक फूल मैं भी पा जाऊँगा। एक याचक की भांति मैंने जब प्रातः उसे खोजा तो फूल की एक दो पंखड़ियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं प्राप्त हुआ।

हाय 'तुमने अपने प्रेम का यह कैसा चिन्ह छोड़ा है। वह न पुष्ह है, न गुलाब पात्र। यह तो तुम्हारी भीषण तल्वार है, जो एक ज्वाला की भांति प्रज्वलित और वज्र के समान भारी है। प्रभात की नव प्रभा वातायन से आकर तुम्हारी शय्या पर फैल जाती है।

प्रभात पत्ती चहचहाते हैं और मुझसे पूछते हैं कि तुझे क्या मिला ? हाय ! न तो यह पुष्प है न गुलाब पात्र, यह तो भीषण तल्वार है।

मैं बैठकर चकित होकर सोचता हूँ कि यह तुम्हारा कैसा दान है। मुझे ऐसा कोई स्थान नहीं मिलता जहां मैं इसे छिपा

सकूं। मैं दुर्बल हृदय इसे पहनते लजाता हूँ। जब मैं इसे अपने हृदय से लगाता हूँ तो वह पीड़ा पहुँचाता है। फिर भी मैं तुम्हारे इस वेदना दान को अपने हृदय पर धारण करूंगा।

आज से मेरे लिये इस जगत में भय नहीं रहेगा, और मेरे सारे जीवन संग्राम में तुम्हारी जय होगी। तुमने मृत्यु को मेरा साथी बनाया है और मैं अपने जीवन रूपी मुकुट से उसके मस्तक को आभूषित करूंगा। तुम्हारी यह तल्वार मेरे सब बंधनों को काटने के लिये मेरे पास है। मेरे लिये अब संसार में कोई भय नहीं है।

आज से मैं समस्त तुच्छ शृंगारों को तिलांजलि देता हूँ। आज से एकान्त में बैठकर रोने और प्रतीक्षा करने का अन्त है। तुमने अपनी तल्वार मुझे शृंगार के लिये प्रदान की है। यही मेरा महा साज है।

———

# ५१

रात्रि का अन्धकार छा गया था। दिनके सब कार्य समाप्त हो गये थे। हमने सोचा कि जिनको आना था वे सब आ चुके। गांव के सब द्वार बन्द हो गये थे। कुछ लोगों ने कहा, अभी प्रभु आने वाले हैं। किन्तु हमने हंसकर कहा 'ऐसा नहीं हो सकता।'

द्वार पर खटखटाहट प्रतीत हुई। हमने कहा यह वायुका शब्द है।' दीपक बुझा दिये गये और हम सोने के लिये लेट गये। कुछ लोग बोल उठे, 'लो दूत आ पहुँचे। किन्तु हमने हंस-कर कहा, 'नहीं, यह वायु के झोंके ही हैं।

निस्तब्ध रात्रि में फिर शब्द हुआ! हम लोग नींद में समझे कि यह दूरस्थ मेघों की गरज है। लो, अब पृथ्वी कंपी, दीवारें हिलीं और हमारी निद्रा में विघ्न पड़ा। कुछ लोग कहने लगे कि यह पहियों की ध्वनि है। किन्तु हमने ऊंघते हुए उत्तर दिया, 'नहीं, यह तो मेघों का गर्जन है।'

अभी रात्री शेष थी कि भेरी बज उठी। आवाज़ आई, 'जागो, विलम्ब मत करो।' हम दोनों हाथों से हृदय को थाम कर बैठ गये और भय से कांप उठे। लोगों ने कहा, 'लो, प्रभु

की ध्वजा दिखाई देती है।' हम पैरों के बल खड़े हो गये और चिल्लाये, अब देर करने का समय नहीं है। प्रभु आ पहूँचे। पूजा आसन, थाल कहाँ है? उनको बैठाने योग्य स्थान कहाँ है? एक ने कहा, 'अब रोना व्यर्थ है। शून्य हाथों से स्वागत करो और शून्य गृह में उन्हें ले आओ। द्वार खोल दो, शंख बजने दो। अन्धेरे घर का स्वामी आया है, आकाश में मेघ गरज रहे हैं, अन्धकार विद्युत छटा से कम्पित है। अपने फटे पुराने आसन को लाकर आंगन में बिछा दो।

---

# ५३

तुम्हारे कंगन क्या ही सुन्दर हैं। वे तारों से खचित और असंख्य रंगीन चित्रों से कला पूर्ण जटित हैं। किन्तु विद्युत के समान बांकी तुम्हारी तलवार इसे भी अधिक मुझे सुन्दर प्रतीत होती है। वह गरूड पंख की भांति विस्तृत और अस्ताचल की रक्त ज्योति में आवृत है।

कालके अन्तिम प्रहार से उत्पन्न तीव्र वेदना में अन्तिम श्वास की भांति वह कंपकंपाती है। वह उस पवित्र आत्म ज्योति के समान चमकती है जिसने अपनी भीषण ज्वाला से पार्थिव भावों को भस्म कर डाला है।

तुम्हारे कंगन अत्यन्त सुन्दर हैं। वह तारों सदृश्य रत्नों से जटित हैं, किन्तु तुम्हारी यह तलवार परम सौन्दर्य से रची गई है जिसको देखने और विचारने से भय होता है,

---

# ५४

मैंने तुमसे कुछ भी याचना नहीं की। न मैंने अपना नाम ही तुम पर प्रकट किया। जब तुम बिदा हुए तो मैं चुप चाप खड़ा हो गया। मैं उस कुंए की जगत पर अकेला था जहां वृक्ष की छाया तिरछी पड़ती थी। युवतियां अपने घड़ों को मुंह तक भरकर अपने घड़ों को लौट रही थीं। उन्होंने मुझे पुकार कर बुलाया और कहा' 'हमारे साथ आओ। प्रभात बीत गया और अब मध्यान्ह हो रहा है।' किन्तु मैं आलस्य में ठिठक रहा और संकल्प विकल्पों में डूबा रहा।

जब तुम आये तब मैंने तुम्हारी पदध्वनि नहीं सुनी। जब तुम्हारे नेत्र मुझ पर पड़े, वे उदास थे। तुमने क्षीण स्वर में कहा, 'अरे, मैं एक प्यासा पथिक हूँ।' मैं यह सुनकर चकित हुआ और अपने घड़े से तुम्हारी अंजुलि में जल डाला। शिर के ऊपर पत्तियां खड़खड़ा रही थीं। कोयल ने अदृश्य में अंधेरे कुहू कुहू का राग अलाया और पथ के कौने से फूलों के सौरभ का आगमन हुआ।

जब तुमने मेरा नाम पूछा तो मैं लज्जावश अवाक रह गया। वास्तव में मैंने तुम्हारा कोई कार्य नहीं किया था। परन्तु मेरी यह अकिंचन घटना कि मैंने तुम्हारी प्यास बुझाई, मेरे मन में सदैव माधुर्य बखेरती रहेगी।

---

# ५५

तुम्हारा मन आलसी है और नेत्र ऊंनीदे हैं।

क्या तुमने नहीं सुना कि फूल ऐश्वर्य के साथ कांटों में राज्य कर रहा है। अरे, जागे हुए जाग। समय को व्यर्थ न खो।

पथरीले पथ के अन्त में अगम विजन देश में मेरा प्रभु अकेला बैठा हुआ है। उसकी बंचना न कर। अरे, जागे हुए जाग।

यदि मध्यान्ह सूर्य की ताप से गगन कांपे तो क्या? यदि तप्त बालू पिपासा का आंचल फैलादे तो क्या?

क्या तुम्हारे हृदय में आनन्द नहीं है? क्या तुम्हारे प्रत्येक पग पर पथ-वीणा वेदना के मधुर स्वर में न बज उठेगी।

# ५६

तुमको मुझमें पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। इसीलिये तुम अपने ऊँचे आसन से नीचे उतरते हो। हे जगत्पति! यदि मैं न होता तो तुम्हारा प्रेम कैसे प्रकट होता?

तुमने मुझे इस समस्त ऐश्वर्य और समृद्धि में सम्मिलित किया है। मेरे हृदय में तुम्हारा आनन्द अनेक लीलायें करता है। मेरे जीवन में तुम्हारी इच्छा सदैव स्वरूप धारण करती है।

हे जगत्पति! तभी तो तुमने मेरे हृदय को मोहित करने के लिये स्वयं को सौन्दर्य में विभूषित किया है। तभी तो तुम्हारा प्रेम मेरे प्रेम में लीन होकर दोनों की पूर्ण एकता में तुम्हारा दर्शन होता है।

---

# ५७

प्रकाश ! मेरे प्रकाश ! जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रकाश ! हृदय को मधुर करने वाले प्रकाश ! मेरे परम प्रिय ! यह प्रकाश मेरे जीवन-केन्द्र पर नृत्य कर रहा है। प्रकाश मेरी जीवन वीणा बजा रहा है। प्रकाश से आकाश में जागृति होती है; वायु वेग से बहती है; और समस्त पृथ्वी मण्डल हंसने लगता है। प्रकाश के समुद्र में तितलियां अपने पंख रूपी पाल फैलाती हैं। प्रकाश की तरंग शिखा पर मल्लिका और मालती हिलोरें लेती हैं। प्रकाश की किरणें बादलों पर पड़कर स्वर्ण रूप हो जाती हैं और सहस्त्रों मणियों को गगन मण्डल में बखेरतीं हैं। मेरे प्रिय ! पत्ते २ पर अपरिमित आनन्द बिखर रहा है। सुर सरिताने अपने कूलों को डुबो लिया है और आनन्द की बाढ़ उमड़ पड़ी है।

———

# ५८

उस परम आनन्द के सब स्वर मेरे अन्तिम गीत में आकर मिल जांय, जिसके वशीभूत होकर भूमि अपने ऊपर घनी घास अत्यन्त प्रचुरता से उत्पन्न करती है, जो जीवन और मृत्यु को इस विस्तृत संसार में नचाता है, जो प्रलय के साथ आता है अट्टहास से साथ सारे जीवन को हिलाता और जगाता है, जो दुख के खिले हुए लाल कमल के ऊपर अपने आंसुओं से युक्त शान्तिपूर्वक विराजता है, जो सर्वस्व को धूलि में फेंक देता है और पश्चात्ताप अथवा दुख का एक श्वास भी नहीं लेता।

# ५९

मेरे प्रिय ! मैं जानता हूँ कि यह स्वर्णमय प्रकाश जो पत्तियों पर नृत्य कर रहा है ये बादल जो आकाश में यत्र-तत्र विचर रहे हैं, प्रभात की यह मन्द गति वायु जो मेरे मस्तक को शीतल करती हुई बह रही है, सब तुम्हारा प्रेम ही है।

प्रातः कालीन आकाश ने मेरे नेत्रों को प्लावित कर दिया है—यही तुम्हारा सदेश है। तुमने अपना मुख मेरी ओर झुकाया है, तुम्हारे नेत्र मेरे नेत्रों पर लगे हैं। मेरा हृदय तुम्हारे चरणों में है।

---

## ६०

अपार संसार के समुद्र तट पर बालक एकत्रित होते हैं। ऊपर आकाश स्थिर है, सम्मुख जल चलायमान है। बालक अपार संसार के समुद्र तट पर एकत्रित होकर चिल्लाते और नृत्य करते हैं।

वे बालू से घर बनाते हैं और शंखों से खेलते हैं। सूखे पत्तों की नौका बनाकर विपुल गम्भीर सलिल पर हँस हँसकर तैरते हैं। अपार संसार के समुद्र तट पर एकत्रित होकर बालक इसी प्रकार खेलते रहते हैं।

वे नहीं जानते कि कैसे तैरते हैं, कैसे जाल डालते हैं। पनडुब्बे मोतियों की खोज में डुबकी लगाते हैं, व्यापारी जहाजों पर जा रहे हैं, किन्तु बालक केवल कंकड़ जमा करते और बखेर देते हैं। वे गुप्त रत्नों को नहीं ढूंढ़ते और जाल डालना नहीं जानते। समुद्र हँसी से उमड़ा पड़ता है, और तट पर पीत आभा बिखर रही है। बच्चों को जिस प्रकार मां की लोरियां अर्थहीन होती हैं, उसी प्रकार सागर की ये मृत्युवाहक तरंगें भी प्रतीत होती हैं।

पथहीन आकाश में विकराल आंधी चलती है। सुदूर जल में जहाज नष्ट होते हैं मृत्यु सर्वत्र मंडरा रही है, किन्तु बालक खेल ही रहे हैं पारावार जगत के समुद्र तट पर बालकों का विशाल मेला लगा है।

# ६१

कहो, बच्चों की आंखों में निदिया कहां से आती है? हाँ, उसका निवास स्थान सुदूर बन की घनी छाया के मध्य में स्थित एक सुन्दर परी प्रदेश है जहां जुगनुओं का मन्द प्रकाश होता है। और जहां दो मनमोहनी सुकुमार कलियां झूलती हैं। इसी रमणीक स्थान से निदिया बच्चे की आँखें चूमने आती है।

कहो, सोते हुए बच्चे के ओठों पर मुस्क्यान कहां के प्रकट होती है? हां, एक बार शिशुचन्द्र की एक नवीन पीत किरण किसी शरद् मेघ की कोर से छू गई और इस प्रकार वहां शिशिर शुचि प्रभात की स्वप्न अवस्था में मुस्कयान का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ। वही मुस्कयान बच्चे की सुषुप्त अवस्था में प्रकट होती है।

कहो, बच्चे के अंगों में विकसित मधुर कोमल लावण्यता कहां छिपी हुई थी हां, जब माता किशोर अवस्था में थी तब वही मधुर कोमलता प्रकट रहस्यमय मृदुल प्रेम के रूप में उसके हृदय में व्याप्त थी।

---

# ६२

शिशु ! जब मैं तुम्हारे लिये रंग बिरंगे खिलौने लाता हूँ तब मुझे ज्ञात होता है कि बादल इतने रंग बिरंगे क्यों हैं, जल तरंगों और झरनों में विविध वर्ण की रेखायें क्यों प्रकट होती हैं और फूल पत्तों में क्यों इतना वर्ण लालित्य है।

शिशु ! जब मैं गीत गाकर तुम्हें नचाता हूँ तब मैं यथार्थ रूप से जान जाता हूँ कि वन पत्तियों में इतना गायन क्यों होता है तथा संसार के रसिक श्रोताओं के हृदय में समुद्र की तरङ्गों से अनेक स्वरों और रागों से परिपूर्ण गीत क्यों ध्वनित होते हैं।

शिशु ! जब मैं तुम्हारे लोलुप करों में मिठाई देता हूँ तब मैं समझ पाता हूँ कि पुष्प पात्र में मधु क्यों है तथा फलों में मधुरस गुप्त रीति से क्यों भरा गया है।

शिशु ! तुम्हें हँसाने के लिये जब मैं तुम्हारा मुँह चूमता हूँ तब मैं उस सुख को जान जाता हूँ जो आकाश से प्रातः कालीन प्रकाश में प्रवाहित होता है।

---

# ६३

तुमने मेरा परिचय उन मित्रों से कराया है जिन्हें मैं नहीं जानता था। तुमने मुझे उस गृह में आसीन किया है।जो मेरा नहीं था। तुमने दूर को निकट कर दिया है और अबन्धु को बन्धु बना दिया है।

जब मुझे अपने पुरातन गृह को त्यागना पड़ता है तब मैं व्याकुल होता हूँ। मैं भूल जाता हूँ कि नूतन में पुरातन विद्यमान है और वहीं तुम भी विद्यमान हो।

मेरे अनन्त जीवन के एक मात्र साथी! इस लोक में या परलोक में जीवन मरण द्वारा जहां कहीं तुम मुझे ले जाते हो, वहां तुम आनन्द के बंधनों से अपरिचितों के साथ मेरे हृदय को मिला देते हो।

जब जीव तुम्हें जान जाता है तब उसके लिये कोई अबन्धु नहीं रहता। तब उसके लिये सब द्वार खुल जाते हैं। प्रभु! मुझे यही वर दो कि मैं अनेकत्त्व के बीच में एकत्त्व के अनुभव आनन्द से कभी वंचित न रहूँ।

---

# ६४

निर्जन नदी के तीर घास के वन में मैंने उससे पूछा 'हे कुमारी, दीपक को आंचल से ढककर तुम कहाँ जा रही हो ? मेरे घर में नितान्त अँधेरा और सूनसान है, कृपाकर अपना दीपक मुझे देदो ।' उसने अपने कृष्ण नेत्रों को क्षण भर के लिये मेरी ओर उठाया और कहा, 'मैं इस नदी के तट पर इस दीपक को सूर्यास्त के पश्चात जल में बहाने के लिये आई हूँ ।' घास के वन में खड़े २ मैंये वायु से कांपती हुई दीप शिखा को जल धारा में व्यर्थ ही बहते देखा ।

सायंकाल का अँधेरा होते २ मैंने उससे कहा, 'हे कुमारी, जबकि तुम्हारे घर के सब दीपक जल रहे हैं तब इस दीपक को लेकर तुम कहां जा रही हो ? मेरे घर में नितान्त अँधेरा और सूनसान है । कृपाकर तुम अपना दीपक मुझे देदो ।' उसने अपने कृष्ण नेत्र मेरी ओर उठाये और क्षणभर सशंकित खड़ी रही । अन्त में उसने कहा, 'मैं अपने दीपक को आकाश की भेंट करूंगी ।' मैंने खड़े २ देखा कि शून्य आकाश में दीपक व्यर्थ ही जलता रहा ।

अमावस्या की घोर अँधियारी में मैंने उससे पूछा, 'हे कुमारी तुम इस दीपक को हृदय से लगाकर किस खोज में जा रही हो? मेरे घर में नितान्त अँधेरा और सूनसान है। तुम अपना दीपक मुझे देदो। वह पलभर रुकी और कुछ सोचने लगी। वह अँधेरे में मेरे मुख की ओर देखने लगी। उसने कहा, 'मैं इस दीपक को दीपावलि में सजाने आई हूँ।' मैं खड़ा रहा और इस छोटे से दीपक को अन्य दीपकों में व्यर्थ जलते हुए देखता रहा।

## ६५

प्रभु ! मेरे जीवन के लबालब भरे पात्र से तुम कौनसा दिव्यरस पान करना चाहते हो ?

कवि ! मेरे नेत्रों से अपनी सृष्टि को देखने और मेरे कानों के द्वार पर खड़े होकर अपने ही नित्य मधुर गान को चुप-चाप सुनने में तुम्हें क्या आनन्द आता है ?

तुम्हारी सृष्टि से ही मेरे मन में शब्द रचना होती है और तुम्हारे आनन्द से उसमें गान उत्पन्न होता है ।

तुम प्रेमवश होकर स्वयं को मुझे-प्रदान करते हो और फिर मुझ में अपने ही पूर्ण आनन्द का अनुभव करते हो?

---

# ६६

वह जो संध्या के अभाव में मेरी आत्मा के अन्तरम प्रदेश में विद्यमान रही, वह जिसने प्रभात के आलोक में घूंघट कभी नहीं खोला, प्रभु! मैं उसे अपने अन्तिम गीत द्वारा तुम्हारी भेंट करूंगा।

वाणी ने उसे वशी करना चाहा पर वह नहीं हुई। लोगों ने उत्सुकता और उत्साह से उसे समझाने और मनाने का प्रयत्न किया पर सफल नहीं हुए।

मैं उसे अपने अन्तःकरण में धारण करके देश विदेश फिरा, वही मेरे जीवन की वृद्धि और ह्रास का केन्द्र रही।

मेरे विचार, कर्म, निद्रा और स्वप्नों पर उसने शासन किया है। पर वह अकेली और अलग रही है।

बहुतों ने मेरे द्वार को खटखटाया। उसके सम्बन्ध में पूंछतांछ की, पर निराश होकर चले गये। इस संसार में ऐसा कोई नहीं है जिसने उसका साक्षात् दर्श किया हो, वह तुम्हारी स्वीकृति की प्रतीक्षा करती हुई एकान्त में बैठी रही।

# ६७

तुम ही आकाश हो और तुम्हीं नीड़ हो। यह तुम्हारा ही प्रेम है जो मेरी आत्मा को अनेक वर्णों, गीतों तथा गंधों से आभूत किये हुए है।

यहां उषा अपने हाथ में स्वर्ण पात्र में सौन्दर्य की माला लेकर चुप चाप धरा ललाट को शांति पूर्वक अलंकृत करने को आती है।

यहां रश्चिम और शान्त समुद्र से शीतल शांतिवारि को स्वर्णघट में भरकर चिन्हहीन मार्गों में होती हुई धेनुशून्य मैदानों में संध्या आ विराजती है।

परन्तु उस स्थान में, जहां अनन्त आकाश आत्मा की उड़ान के लिये फैला हुआ है, निर्मल उज्जवल भास का राज्य है। वहां न दिन है, न रात है, न रूप है, न रङ्ग है। वहां एक शब्द भी नहीं है।

---

# ६८

रविरश्मियां अपनी भुजाओं को बढ़ाये हुए इस पृथ्वी पर आती हैं और समस्त दिन मेरे द्वार पर मेरे आंसु मेरी उच्छ्वास तथा मेरे गीतों से बने हुए मेघों को तुम्हारे चरणों में लेजाने के लिये खड़ी रहती हैं।

तुमने आनन्दविभोर होकर अपने ताराजटित वक्षस्थल के आसपास धुंधले बादलों का आवरण ओढ़ लिया है। तुम इस आवरण को अनेक रूप और तहों में परिवर्त्तित करते तथा ललित्यपूर्ण रंगते हो।

वे बादल अति चपल, कोमल, कारूणिक और श्यामल हैं। तभी तो तुम उन्हें इतना प्यार करते हो और इसीलिये वे तुम्हारे तेजस्वी उज्ज्वल प्रकाश को अपनी करुणामयी छाया से ढक लेते हैं।

# ६९

जीवन की जो धारा मेरी नसों में दिन रात प्रवाहित होती है, वही समस्त विश्व में वेग से बह रही है और ताल स्वर सहित नृत्य कर रही है।

यह वही जीवन है जो पृथ्वी पर असंख्य तृणों क रूप में प्रकट होता है और फूल पत्तियों की तरंगों में आविर्भूत होता है।

यह वही जीवन है जो जीवन मृत्यु सागर के उतार भाटे के पालने में हिलोरें मारता है।

मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा अङ्ग इस विश्वव्यापी जीवन के स्पर्श से रमणीक होते हैं और मुझे उस युग युगान्तरवर्ती जीवन स्पन्दन का अभिमान है जो इस समय भी मेरे रक्त में नृत्य कर रहा है।

---

## ७०

क्या इस वाद्य के आनन्द से आनन्दित होना और इस भयंकर प्रमोद के भंवर में हिलोरें मारना और समा जाना तुम्हारी शक्ति में नहीं है ?

सब वस्तुयें वेग से बढ़ती जा रही हैं। वे ठहरती नहीं, वे पीछे देखती नहीं, कोई शक्ति उनको रोक नहीं सकती। वे आगे ही बढ़ती जा रही हैं।

उस चंचल और वेगवान वाद्य के साथ साथ ऋतुयें नृत्य करती हुई आती हैं और चली जाती हैं। विविध राग रंग और गंधों के अनन्त झरने उस परिपूर्ण आनन्द में आकर गिरते हैं जो प्रत्येक क्षण फैलता और नष्ट होता है।

# ७१

तुम्हारी अपार माया है। मैं स्वयं पर अभिमान करता हूँ। इस अभिमान को सब ओर लिये फिरता हूँ और तुम्हारे अभास पर रंग बिरंगी छाया डालता रहता हूँ।

तुम पहले अपना अंश करते हो और फिर अपनी विच्छिन्न आत्मा को असंख्य नामों से पुकारते हो। तुम्हारी विच्छिन्न आत्मा मेरे शरीर के रूप में प्रकट हुई है।

तुम्हारे मर्मस्पर्शी गीतों की प्रतिध्वनि विविध प्रकार के आंसू, मुस्क्यान, भय और आशाओं के रूप में सारे आकाश में हो रही है। लहरें ऊपर उठती हैं और गिरती हैं। स्वप्न आते हैं और मिटते है।

इस सृष्टि रूपी यवनिका पर जिसकी रचना तुमने की है, रात दिन की तूलिका से असंख्य चित्र चित्रित किये हैं। इसके पीछे तुम्हारा सिंहासन बांकी रेखाओं के विचित्र रहस्यों से बनाया गया है।

मेरी और तुम्हारी प्रदर्शिनी से सारा आकाश व्याप्त है। मेरे और तुम्हारे स्वर से सारा आकाशमण्डल गूंज रहा है। तुम्हारी और मेरी इस आंख मिचौनी के खेल में युग पर युग बीतते चले जाते हैं।

---

# ७२

वही तो मेरा अन्तरात्मा है जो मेरी जीवात्मा को अपने गम्भीर अदृश्य स्पर्शों से जागृत करता है।

यह वही है जो इन नेत्रों पर अपना प्रभाव करता है और जो मेरी हृदय वीणा के तारों पर सुखदुख के विविध स्वरों को आनन्द से बजाता है।

यह वही है जो इस माया के जाल को सुनहरी, रूपहले, हरे और नीले क्षणिक रंगों में बुनता है, और फिर उन जालों में से अपने चरणों को बाहर निकलने देता है जिनके स्पर्श मात्र से मैं स्वयं कोभूल जाता हूँ।

दिन आते हैं और युग के युग व्यतीत होते हैं। यह केवल वही है जो मेरे हृदय को अनेक नाम रूप तथा हर्ष शोक उद्वेगों में घुमाता है।

---

# ७३

मेरे लिये मुक्ति नहीं है। मुझे तो आनन्द के सहस्त्रों बंधनों में मुक्ति का प्राप्त होती है।

तुम मेरे लिये सदैव अनेक रंगों और गन्धों के अमृत की वर्षा किया करते हो और मेरे इस मिट्टी के पात्र को लबालब भर देते हो।

मेरा संसार अपने अनेक दीपों को तुम्हारी ज्योति से प्रज्ज्वलित करके तुम्हारे मंदिर की वेदि पर चढ़ायेगा।

नहीं, मैं अपनी इन्द्रियों के द्वार कभी बन्द नहीं करूंगा। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का सुख तुम्हारे परम आनन्द को उत्पन्न करेगा।

हां, मेरे सब भ्रम और संशय तुम्हारे आनन्द की ज्योति में भस्म हो जायेंगे। और मेरी सब वासनायें प्रेम में परिणित हो जायेंगी।

---

# ७४

सूर्य अस्त है और पृथ्वी पर अन्धकार छाने लगा है। यही समय है कि अपना घट भरने के लिये मैं नदी को जाऊं।

जल के गम्भीर गान से सन्ध्या समीर आकुल है। वह मुझे गोधूलि में प्रवेश करने के लिये बाहर बुलाती है। जनहीन पथ में कोई आता जाता नहीं है। हवा चल रही है और तरंगे हिलोरें मार रही हैं।

मुझे नहीं मालूम कि मैं लौटकर घर आऊंगा अथवा नहीं। मैं नहीं जानता कि वहां किससे भेंट हो जाय। वहां घाट पर छोटीसी नौका में बैठा हुआ वह अपरिचित जन अपनी वीणा बजा रहा है।

---

## ७५

प्रभु ! तुमने हम जीवों को जो कुछ दिया है वह हमारी सब आवश्यकताओं को पूर्ण करके फिर तुम्हारे पास ज्यों का त्यों लौट जाता है।

नदी अपना नित्य कार्य करती और खेतों तथा बस्तियों में होकर वेग से बहती चली जाती है। उसकी निरन्तर धारा तुम्हारे चरणों की ओर प्रक्षालन के लिये घूम जाती है।

फूल अपने सौरभ से वायु को सुगंधित करते हैं। उनकी अन्तिम सेवा यही है कि वे तुम्हारे चरणों में अर्पित हों।

तुम्हारी इस पूजा से संसार वृद्धि करता है।

कवि के शब्दों का अर्थ लोग अपनी रुचि के अनुसार लगाते हैं किन्तु उनके वास्तविक अर्थ का लक्ष्य तुम ही हो।

---

# ८४

वियोग की पीड़ा समस्त भुवन में फैली हुई है और अनन्त आकाश मण्डल में अगणित रूपों को उत्पन्न कर रही है।

वियोग की पीड़ा से ही तारागण एक दूसरे की ओर रातभर टकटकी लगाये रहते हैं। सावन के वर्षा अंधकार में खड़खड़ाती पत्तियों से वीणा की ध्वनि निकलती है।

वियोग की सर्व व्यापिनी वेदना मानवी गृहों में प्रेम और वासना तथा शोक और आनन्द में घनीभूत होती है, जो मुझ कवि के हृदय से झर २ कर गीतों के रूप में प्रवाहित होती है।

———

# ८५

अब योद्धागण प्रभु गृह से आये थे तब उन्होंने अपना विपुल बल कहां छिपा दिया था ? उनके कवच और शस्त्र कहां थे ?

वे दीन और असहाय दिखाई पड़ते थे। उनपर चारों ओर से बाणों की वर्षा होती थी।

जिस समय योद्धागण प्रभु गृह को लौटे तब उन्होंने अपना विपुल बल कहां छिपा दिया था ?

उन्होंने अपनी तलवार रख दी थी और धनुष बाण डाल दिये थे। उनके मस्तक पर शान्ति विराजमान थी और उन्होंने अपने जीवन के फलों को अपने पीछे छोड़ दिया था।

# ८६

तुम्हारा सेवक यम आज मेरे द्वार पर आया है। वह अज्ञात सागर को पार करके मेरे द्वार पर तुम्हारा सम्वाद लाया है।

रात अंधेरी है। मेरा मन भयभीत है। तब भी मैं हाथ में दीपक लेकर अपने द्वार को खोलूंगा और विनययुक्त उनका स्वागत करूंगा। क्योंकि वह तुम्हारा दूत है और मेरे द्वार पर खड़ा है।

हाथ जोड़ कर अश्रुजल से मैं उसकी पूजा करूंगा और अपने हृदय रत्न को उसके चरणों में अर्पण कर दूंगा।

वह अपना कार्य पूर्ण करके लौट जायगा और मेरे प्रभात पर एक अंधेरी छाया छोड़ जायगा। मेरे शून्य गृह में केवल मेरी अनाश्रित आत्मा तुम्हारी अन्तिम भेंट के लिये शेष रह जायगी।

---

# ८७

अत्यन्त निराश होकर मैंने उसे निज गृह के कोने कोने में ढूंढ़ लिया, पर वह नहीं मिला।

मेरा घर छोटा है और जो कुछ वहां से एक बार जाता रहा, वह फिर वहां प्राप्त नहीं हो सका।

प्रभु ! परन्तु तुम्हारे भवन का आदि अन्त नहीं है। उसे ढूढ़ने २ मैं तुम्हारे द्वार पर आ पहुँचा हूँ।

मैं तुम्हारे सन्ध्या गगन के स्वर्णछत्र के नीचे खड़ा हूँ अपने उत्सुक नयनों को तुम्हारे मुख की ओर उठाता हूँ।

मैं नित्यता के तट तक आ गया हूँ जहां से कोई वस्तु लोप नहीं हो सकती। जहां से कोई आशा, कोई आनन्द अथवा अश्रुतदृष्टिमुख मिट नहीं सकता।

मेरे शून्य जीवन को उस अनन्त सागर में डुबकी दो और परिपूर्णता की अगाध गहराई में उसे मग्न करदो। मुझे एक बार सारे विश्व के बीच में खोये हुए कोमल स्पर्श को अनुभव करने दो।

———

# ८८

हे जीर्ण मन्दिर के देवता ! वीणा के टूटे हुए तार अब तुम्हारा गुणगान नहीं करते। अब सन्ध्या समय घन्टे तुम्हारी आरती की घोषणा नहीं करते। तुम्हारे समीप की वायु शान्त और स्थिर है।

वसन्त की मन्द वायु रह २ कर तुम्हारे निर्जन भवन में उन फूलों के समाचार लाती है जो पूजा में अब तुम्हें नहीं चढ़ाये जाते।

तुम्हारा पुजारी उस प्रसाद की खोज में भटक रहा है जो अभी तक उसे प्राप्त नहीं हुआ। सन्ध्या समय जब धूलि, प्रकाश और अन्धकार तीनों मिलते हैं, तब वह थका मांदा और भूखा जीर्ण मन्दिर को वापिस आता है।

हे जीर्ण मन्दिर के देवता ! कितने ही उत्सव तुम्हारे पास से होकर चुपचाप निकल जाते हैं। पूजा की बहुत सी रातें बीत जाती हैं, परन्तु तुम्हारे समीप एक दीपक भी नहीं जलता।

प्रवीण शिल्पी अनेक नवीन प्रतिमा बनाते हैं और जब उनका समय आ जाता है तब वे विस्मृति की पवित्र धारा में विसर्जन कर दी जाती हैं।

किन्तु, अकेला जीर्ण मन्दिर का देवता निरन्तर उपेक्षा के कारण पूजा से वञ्चित रहता है।

---

# ८१

अब न तो चिल्लाऊँ और न ज़ोर से पुकारूं—यही मेरे प्रभु की इच्छा है। अब मैं बहुत धीरे २ ही निवेदन करूंगा और मेरे हृदय का भाषण गीतों की गुनगुनाहट में प्रकट होगा।

लोग हाट को जा रहे हैं। सब खरीदने बेचने वाले वहां विद्यमान हैं। परन्तु मैंने काम काज के घमासान में मध्यान्ह बेला में ही सब कुछ त्याग दिया है।

तब तो इस असमय में ही मेरे उद्यान में फूलों को निकलने दो और मध्यान्ह काल में मधुमक्षिकाओं को मृदु गुञ्जार करने दो।

भले बुरे के द्वन्द में मैंने अपना बहुत सा समय नष्ट किया, परन्तु अब मेरे खाली दिनों के साथी की इच्छा मेरे हृदय को अपनी ओर खींच लेने की है। मुझे नहीं मालूम कि मैं इस प्रकार अकस्मात् किस निष्प्रयोजन परिणाम के लिये बुलाया जाता हूँ।

---

## ९०

जब मृत्यु द्वार को खटखटायेगी तब उसे क्या भेंट करेगा ?

प्रिय ! मैं अपने अतिथि के सम्मुख, अपने जीवन का भरपूर पात्र रख दूंगा। मैं उसे खाली हाथ कभी न जाने दूंगा।

जब अन्तकाल में मृत्यु मेरे द्वार को खटखटायेगी तब मैं हेमन्त के सब दिन तथा वसन्त की सब रात्रियों के फल फूल और अपने कार्यग्रस्त जीवन की सब उपार्जित और एकत्रित सम्पत्ति को उसके आगे रख दूंगा।

---

# ९१

मृत्यु ! मेरी मृत्यु ! मेरे जीवन की अन्तिम पूर्णता। आ, और मेरे कानों को मधुर सम्वाद सुना। मैंने तेरे आगमन की प्रतीक्षा की है और तेरे लिये ही जीवन के सब दुख सुख सहे हैं।

मैं जो कुछ हूँ मेरे पास जो कुछ है, मैं जो कुछ आशा करता हूँ और मेरा प्रेम, ये सब बड़ी गम्भीरता पूर्वक तेरी ओर प्रवाहित होते रहे हैं। मेरे ऊपर तेरे नयनों का अन्तिम कटाक्ष पड़ते ही मेरा जीवन सदैव के लिये तेरा हो जायेगा।

फूल गूंथ लिये गये हैं और प्रभु के लिये माला तैयार है। मृत्यु के पश्चात भक्त अपने घर से विदा होगा और अपने स्वामी से शून्य रात्रि में अकेला मिलन करेगा।

---

# १००

मैं आकारों के समुद्र में इस आशा से गहरी डुबकी मारता हूँ कि निराकार का पूर्ण मोती मेरे हाथ आ जाय।

अब मैं इस काल जर्जरित नौका पर बैठकर घाट २ नहीं फिरूंगा। अब वह पुराने दिन बीत गये जब लहरों पर थपेड़ें खाना ही मेरा खेल था।

अब मैं उत्सुक हूँ कि मर कर अमरत्व में लीन हो जाऊँ।

मैं अपनी जीवन वीणा को वहां ले जाऊँगा जहां अथाह गहराई के समीप सभा भवन में ताल ध्वनि रहित गान होता है।

मैं इसे नित्यता के रागों में मिलाऊँगा और जब अन्तिम स्वर निकलने के पश्चात मेरी वीणा शान्त हो चुकेगी तब मैं उसे शान्तिमय के चरण कमलों में समर्पण कर दूंगा।

---

# १०१

मैं अपने जीवन भर अपने गीतों के द्वारा तुझे सदैव ढूंढ़ता रहा। ये गीत ही मुझे द्वार २ फिराते रहे और मैंने अपने तथा जगत के विषय में जो कुछ अनुभव एवं अन्वेषण किया वह सब उन्हीं की सहायता का फल है।

मैंने जो कुछ सीखा है वह सब इन्हीं गीतों ने मुझे सिखाया है। उन्होंने मुझे गुप्त पथ दिखाये और मुझे मेरे हृदयरूपी क्षितिज पर बहुत से तारों का दर्शन कराया है।

वे सदा मेरे सुख दुख रूपी देश के रहस्यों के पथ प्रदर्शक बने और मेरी यात्रा के अन्त में सन्ध्या समय न जाने किस राज भवन के द्वार पर मुझे लाकर खड़ा कर दिया।

---

# १०२

मैं लोगों के सम्मुख गर्व करता था कि मैंने तुमको जान लिया है। वे मेरे सब कार्यों में तुम्हारे चित्र देखते और मुझसे पूछते हैं "वह कौन है ?" मैं नहीं जानता कि उन्हें उत्तर दूं। मैं कहता हूँ कि वास्तव में मैं कुछ नहीं कह सकता। वे मुझ पर दोष लगाते हैं और मेरा तिरस्कार करके चल देते हैं। तुम वहां मुस्कराते हुए बैठे हो।

मैं तुम्हारी कथाओं को अमर गीतों में प्रकट करता हूँ और तुम्हारा रहस्य मेरे हृदय से निकल पड़ता है। लोग मेरे पास आते हैं और पूंछते हैं, 'तुम हमें अपने गीतों के अर्थ बताओ।' मैं नहीं जानता कि उन्हें क्या उत्तर दूं। मैं कहता हूँ, 'अरे ऐसा कौन है जो उनके अभिप्राय को समझता हो।' वे हंसते हैं और नितान्त तिरस्कार करते हुए चल देते हैं। तुम वहां मुस्कराते हुए बैठे हो।

———

# १०३

मेरे प्रभु ! मेरी सारी इन्द्रियाँ एक ही प्रणाम में तुम्हारी ओर लग जांय और इस संसार को तुम्हारे चरणों पर पड़ा जान कर उससे संसर्ग करें।

जैसे सावन का मेघ बिना बरसे हुए पानी के भार से नीचे झुक जाता है, वैसे ही मेरा सारा मन एक ही प्रणाम के करने में तुम्हारे द्वार पर अति नम्र हो जाय।

मेरे सब गीतों के विविध रागों को एक धारा में एकत्र होने दो और एक ही प्रणाम में शान्ति सागर की ओर प्रवाहित होने दो।

जैसे घर के वियोग से व्याकुल हंसों का समूह रात दिन अपने पहाड़ी घोंसलों की ओर उड़ता हुआ लौटता है वैसे ही मेरी आत्मा को एक ही प्रणाम में अपने सनातन बास स्थान की यात्रा करने दो।

पूर्ण प्रणाम